परामर्श

(हिन्दी)

खण्ड ३६ अंक १-४
दिसंबर २०१५ - नवंबर २०१६
भारतीय सौर मार्गशीर्ष - कार्तिक शके १९३७-३८
प्रकाशन वर्ष - मई, २०१७

दर्शनशास्त्र विभाग
सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय प्रकाशन

Scanned by CamScanner

अनुक्रमणिका

क्र.	लेखक	लेख	पृ. संख्या
१.	डॉ. सुधा चौधरी	भारतीय दर्शन में चेतना : एक विश्लेषण	१
२.	डॉ. सागरमल जैन	भारतीय दर्शनों में अनेकांतवाद के तत्त्व : एक ऐतिहासिक विवेचन	२५
३.	डॉ. प्रमोद कुमार सिंह	योगाचार विज्ञानवाद एवं काश्मीर शैवदर्शन : एक तुलनात्मक अनुशीलन	४५
४.	डॉ. अनुराग पाण्डेय	श्रीमद्भागवत गीताहृदयम् : भक्तियोगसमीक्षा	५५
५.	डॉ. ममता भाटी	वैष्णव वेदांत में अंतःकरण निरूपण	६९
६.	डॉ. औतार लाल मीणा	नववेदांत की अवधारणा में भ्रांतियां एवं विशेषतायें : एक विश्लेषण	७७
७.	डॉ. मोहित टण्डन	बौद्ध नीतिदर्शन की समकालीन प्रासंगिकता	८७
८.	रानी सिंह	भारतीय दर्शन और भौतिकवाद	९७
९.	डॉ. देवव्रत चौबे	आयुर्वेद में पुनर्जन्म की अवधारणा	१०७
१०.	डॉ. आलोक टण्डन	गाँधी : परम्परा और आधुनिकता	११३
११.	महेन्द्र कुमार प्रेमी और डॉ. आशा चौधरी	महात्मा गाँधी के मानववाद की प्रासंगिकता : एक सामायिक विमर्श	१२५
१२.	डॉ. महेश्वर मिश्र	कबीर की शब्द संचेतना	१४३
१३.	डॉ. द्वारका नाथ	कीर्केगार्ड के दर्शन में ईसाइयत की अवधारणा : एक अस्तित्ववादी मूल्यांकन	१५७
१४.	अनु सिंह	मरे बूकचिन द्वारा जॉन क्लार्क के 'गहन सामाजिक पारिस्थितिकी की समालोचना का पुनर्मूल्यांकन	१६५
१५.	चन्द्रशेखर व्यास	बैंकिंग के मुख्य नैतिक विचार : एक विश्लेषण	१७५

Scanned by CamScanner

वैष्णव वेदान्त में अन्तःकरण निरुपण

डॉ. ममता भाटी

वैष्णव मत में चार प्रमुख सम्प्रदाय है -

रामानुज श्रीः स्वचक्रे मध्वाचार्य चतुर्मुखः।
श्री विष्णुस्वामिनं रुद्रो निम्वादित्यं चतुःसन।।

रामानुज जीव व शरीर के सम्बन्ध को वास्तविक स्वीकार करते हैं। उनका यह मत है कि जीव कर्ता व भोक्ता है। क्योंकि उन्होंने जीव की वास्तविक सत्ता को स्वीकार किया है। यहाँ रामानुज का शंकर से स्पष्ट मतभेद दृष्टिगोचर होता है। शंकर के दर्शन में जीव अविद्या जन्य है जबकि रामानुज ने जीव को वास्तविक माना है।

रामानुज की तत्त्वमीमांसा यर्थार्थवादी है क्योंकि वे ब्रह्म को सविशेष मानते हैं, ब्रह्म परिणामवाद को स्वीकार करते हैं, तथा जीव व ब्रह्म में पूर्ण तादात्म्य नहीं मानते। परिणामवाद को स्वीकार करने के कारण ही वे यह मानते हैं कि जीव व जगत भी सत्य है। विशिष्टाद्वैत की यह मान्यता है कि जीव व ईश्वर में विशेषण-विशेष्य का सम्बन्ध है। जीव विशेषण है तथा ईश्वर विशेष्य है। ईश्वर चिद्चिद्रूप विश्व का अन्तर्यामी आत्मा है और चिद्चिद् उनके शरीर हैं। जीव अपने शरीर का आत्मा है। जीव की नित्यता भी जीव व शरीर के सम्बन्ध का प्रतिपादन करती है क्योंकि जीव नित्य है इस कारण उसकी उत्पत्ति व विनाश सम्भव नहीं है, अतः जीव का शरीर से सम्बन्ध को उसकी उत्पत्ति कहा जाता है और शरीर से होने वाले वियोग को जीव का विनाश कहा जाता है। जीव स्वभाव से आनन्दरूप है। वह परिवर्तन रहित, अविकारी और पूर्ण है किन्तु अविद्या और कर्म के कारण वह बन्धन में पड़कर जन्म-मरण चक्र में घूमता है। कर्म से उसका सम्बन्ध अनादि है। वह शरीर, प्राण, इन्द्रियाँ, अन्तःकरण आदि से संसारी दशा में तादात्म्य स्थापित करके जन्म-मरण चक्र में फंसकर अनेक प्रकार के दुःख भोगता रहता है। वे जीव के ज्ञाता, कर्ता व भोक्ता स्वीकार करते हैं। रामानुज के अनुसार स्वर्ग मोक्ष आदि फल के भोक्ता को ही कर्ता कहा जा सकता है तथा अचेतन प्रकृति

Scanned by CamScanner

को कर्त्ता नहीं कहा जा सकता। इस बात की पुष्टि श्रीभाष्य में की गई है तथा शास्त्र बोधजनक वाक्यों से जीवों का सत्कर्म में प्रवृत्त कराते हैं चूंकि अचेतन प्रकृति को कर्म प्रवृत्त नहीं कराया जा सकता अतः शास्त्रों की सार्थकता, चेतन भोक्ता के लिए ही है। इसीलिए यह कहा गया कि कार्य कर्ता को ही शास्त्रोक्त क्रिया का फल मिलता है।[1] इस प्रकार आत्मा को कर्ता माना गया है। यदि आत्मा के अकर्तृत्व तथा प्रकृति के कर्तृत्व को स्वीकार किया जाये तो सर्व सुलभ प्रकृति से सारे कर्म, सभी के लिए, भोग के साधन हो जाएगें तथा भोग की विषमता का कोई भी नियम नहीं रह पायेगा।[2] किन्तु रामानुज आत्मा को ही एक मात्र कर्ता नहीं स्वीकार करते। उनके मतानुसार जो केवल आत्मा को ही कर्ता मानते हैं वे दुर्मति अकृत बुद्धि के कारण यथार्थता को नहीं समझ पाते, क्योंकि अधिष्ठान (शरीर), कर्ता (जीव), पृथक-पृथक करण (इन्द्रियाँ) विभिन्न प्रकार की चेष्टायें और दैव, ये पांच कारण होते हैं तथा आत्मा का कर्तृत्व अधिष्ठान से लेकर दैव तक पाँचों से सापेक्ष माना जाता है अतः एकमात्र आत्मा ही कर्ता नहीं है।[3] बल्कि आत्मा समस्त प्राणों (इन्द्रियाँ) को ग्रहण करके अपने शरीर में यथेच्छ विहार करता है।[4] शंकर ने यह माना है कि जीव में अज्ञानवश कर्तृत्व का आरोपण होता है जबकि यहाँ वास्तव में जीव को कर्ता माना गया है। रामानुज ने स्पष्ट रूप से इस बात को स्वीकार किया है कि कर्म परमात्मा की इच्छा से होते हैं। परात्तुतच्छुते तेः। सूत्र से यह स्पष्ट है कि जीव के कर्तृत्व परायत्त अर्थात् परमात्मायत्त ही है। 'यह परमात्मा ही जीवों का सर्वान्तर्यामी शासक है' जो आत्मा में अन्तर्यामी रूप से स्थित होकर संयमन करता है। जीवात्मा के कर्तृत्व में परमात्मा प्रेरक है पर इससे जीव की स्वतन्त्रता में कोई आँच नहीं आती है। जीवात्मा जब यह भूल जाता है कि मैं परमात्मा का अंश हूँ तथा परमात्मा मेरे कर्मों के प्रेरक हैं तब जीवात्मा अपने सभी शुभाशुभ कर्मों के शुभाशुभ फल का भोक्ता होता है। जो जीवात्मा प्रयत्नपूर्वक स्वयं को परमात्मा के शरण में ले जाता है और अपने समस्त कर्मों को परमात्मा के प्रति समर्पित कर देता है अर्थात् कर्तापन के अभिमान से रहित हो जाता है और यह स्वीकार कर लेता है कि मेरे सभी शुभाशुभ कर्मों का प्रेरक ईश्वर ही है, ऐसे जीवात्मा को परमेश्वर शुभ कर्म करने के लिए प्रेरित करता है। अर्थात् परमात्मा अपने भक्तों से सदैव उत्तम कर्म ही कराते हैं। परमपुरुष परमात्मा के आश्रित होकर उन्हीं की अनुमति के अनुसार कार्य के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं तथा परमात्मा, उन पर कृपा करके अपनी प्राप्ति के उपायभूत कल्याणमय कर्मों में उसकी रुचि प्रकट करते हैं। भगवान ने स्वयं कहा है कि, "मैं सबकी उत्पत्ति

Scanned by CamScanner

का कारण हूँ, सब मुझसे ही प्रवृत्त किये जाते ऐसा समझ कर समन्वित ज्ञानी भक्त निरन्तर अनुरक्त रहते हैं और मैं उन्हें प्रीतिपूर्वक ऐसी बुद्धि प्रदान करता हूँ, जिससे वे मुझे प्राप्त कर सकें। उन्हीं पर अनुग्रह करके मैं (ईश्वर) उनमें आत्मभाव से स्थित होकर, अज्ञान से उत्पन्न उनके अंधकार को प्रज्वलित ज्ञान दीप के द्वारा नाश कर देता हूँ।[५]

विशिष्टाद्वैतवादी जीव के अणु परिमाण को स्वीकार करते हैं क्योंकि उनकी यह मान्यता है कि आत्मा को यदि विभु परिमाण का मान लिया जाए तो जीव की उत्क्रान्ति, गति एवं आगति का प्रतिपादन सम्भव नहीं होगा। आत्मा का इस शरीर से उत्क्रमण होता है। श्रुति में भी यही कहा गया है कि 'हृदय में होने वाले प्रकाश के द्वारा नाड़ी को जानकर नाड़ी के द्वारा यह जीवात्मा शरीर का त्याग करते समय नेत्रों से या शिरोभाग से या शरीर के किसी अन्य भाग से निकलता है।'[६] आत्मा की गति एवं आगति का वर्णन करते हुए श्रुति में यह बताया गया है कि 'जो भी जीव शरीर का त्याग करके इस लोक से प्रयाण करते हैं, वे सभी चन्द्रलोक में ही जाते हैं तथा स्वर्गलोक से पुनः वह जीव इस लोक में कर्मों को करने तथा कर्मों का फल भोगने के लिए लौट आते है।'[७] इससे यह बात स्पष्ट होती है कि जीव के दो प्रकार के शरीर होते हैं - स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर। स्थूल शरीर पंचभौतिक शरीर होता है तथा सूक्ष्म शरीर इस शरीर के त्यागने के पश्चात भी बना रहता है। इसके द्वारा ही जीव तत्-तत् लोकों में जाकर सुख-दुःखादि का अनुभव करता है। सूक्ष्म शरीर के द्वारा कर्मों का स्थानान्तरण होता है। देह त्याग के समय जीव के पाप पुण्य का एक अंश छूट जाता है परन्तु शेष अंश मार्ग में अर्थात् देहत्याग के बाद परलोक जाते समय छूटता है। पुण्य और पाप का एक अंश, देह त्याग के समय नष्ट माना जाये तथा अविशिष्ट अंश देवयान मार्ग में विनष्ट माना जाये तभी देवयान मार्ग गति की सार्थकता सिद्ध हो सकती है। देह त्याग के समय ही समस्त कर्मों का क्षय स्वीकारने से, सूक्ष्म शरीर का विनाश भी स्वीकारना होगा तथा सूक्ष्म शरीर के विनष्ट हो जाने पर निराधार आत्मा का गमन संभव नहीं है। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि उपासक की मृत्यु के समय ही समस्त कर्मों का क्षय नहीं होता तथा सूक्ष्म शरीर के बिना आत्मा नहीं रह सकता हैं।[८] इन्द्रिय प्राणों सहित इन्द्रियों का स्वामी जीवात्मा उत्क्रान्ति के समय तेज आदि सूक्ष्म भूतों से संसक्त रहता है। परन्तु यहाँ यह शंका उठती है कि जीव की मुक्ति हो जाने पर वे सूक्ष्मभूत जीव के कर्मानुसार उसके साथ ही रहते हैं अथवा परमात्मा में लीन हो जाते हैं? रामानुज का यहाँ यह मत है

Scanned by CamScanner

कि वे परमात्मा में संसक्त हो जाते हैं। क्योंकि वे यह मानते हैं कि इन भूतों के जो कर्मानुसार कार्य होते हैं वे सृष्टि में ही होते हैं। सुषुप्ति और मुर्छा में जैसे जीवात्मा, आत्मस्थ परमात्मा में संसक्त हो जाता है उसी प्रकार मुक्तावस्था में भी जीवात्मा, परमात्मा में संसक्त रहता है। उस समय उसके सुख-दुःखोपभोग के सारे क्रिया कलाप तटस्थ रहते हैं। परन्तु सृष्टिकाल में वे पुनः: जीवात्मा के साथ अपने क्रिया कलाप के विस्तार के लिए सचेष्ट होते हैं।[९] इस प्रकार रामानुज ने जीव को देह का अध्यक्ष माना है। जीव अणु परिमाण का है। जीव का देह के साथ सम्बन्ध वास्तविक होता है तथा जीव का कर्तापन भी वास्तविक है।

रामानुज के समान मध्व भी ईश्वर, जीव और प्रकृति को नित्य तत्त्व मानते हैं जिनमें ईश्वर स्वतन्त्र है और अन्य दोनों तत्त्व ईश्वर परतन्त्र हैं। उनके अनुसार जीव अनेक हैं, अणु परिमाण वाला है। तथा कर्म और प्राकृत शरीर बन्ध के कारण संसरणशील है। मध्व पाँच प्रकार के भेद को वास्तविक मानते हैं। वे जगत् को भी वास्तविक मानते हैं रामानुज के समान ही मध्व भी जीव का कर्ता, ज्ञाता, भोक्ता स्वीकार करते हैं। विष्णु तत्त्व निर्णय में जीव को परिभाषित करते हुए यही कहा गया है कि 'जो स्वयं को' 'मैं हूँ' रूप से जानता है वह जीव है। वह सुख दुःख का भोक्ता है तथा बन्ध व मोक्ष का पात्र है।''[१०] मध्व के दर्शन में जीव को अनेक माना गया है। वे जीव की अनेकता को अनौपाधिक मानते हैं। और इस कारण वे शंकर की औपाधिक अनेकता की कटु आलोचना करते हैं। मध्व का तर्क हैं कि यदि जीवों में पारस्परिक भेद औपाधिक है तो यह बताना कठिन हो जाता है कि उपाधि जीव के अंश को छूती है या उसको समग्र रूप से ढक लेती है, क्योंकि यदि यह मान लिया जाये कि वह जीव के अंश को ही ढकती है तो इससे जीव को सावयव मानना होगा और सावयव मान लेने पर जीव अनित्य हो जायेगा और यदि यह मान लिया जाये कि वह जीव के समग्र स्वरूप को आच्छादित करती है तो अनौपाधिक व सोपाधिक जीव में भेद करना संभव नहीं हो पाएगा। इसके अतिरिक्त एक अन्य समस्या भी उत्पन्न होती है कि उपाधि वास्तविक है या अवास्तविक है। यदि उपाधि वास्तविक है तो वह जीव को वास्तविक रूप से सीमित कर देगी और यही स्थिति अद्वैत वेदान्त को स्वीकार्य नहीं होगी। तथा उपाधि को यदि अवास्तविक मान लें तो यह मानना नितान्त अतार्किक होगा कि अवास्तविक उपाधि आत्मा को बंधन में डालती है। अतः मध्व का जीव की अनेकता को अनौपाधिक मानना ही युक्ति युक्त है। जीव की अनेकता द्वारा देह एवं देही के सम्बन्ध का प्रतिपादन होता है। मध्वोत्तर साहित्य में जीव

Scanned by CamScanner

की साकारता पर बहुत बल दिया गया है। अर्थात् आकार के बिना किसी वस्तु की कल्पना करना असम्भव है। जिस प्रकार से कंचुक ही शरीर का आच्छादन कर पाता है, उससे भिन्न कोई वस्तु इसमें समर्थ नहीं है उसी प्रकार हस्तपादादि-युक्त देह के अभाव में जीव की स्थिति की कल्पना असम्भव है। हस्तपादादि का जीव के साथ स्वाभाविक सम्बन्ध है।[११]

मध्व प्रकृति परिणामवाद को स्वीकार करते हैं। परिणामवाद को मानने के कारण वे जगत् व जीव को भी सत्य स्वीकारते हैं। इस कारण वे यह मानते हैं कि जीव में कर्तृत्व एवं भोक्तृत्व वास्तविक रूप है। यह सभी ईश्वराधीन है। इस प्रकार मध्व के दर्शन में यथार्थवादी दृष्टिकोण का बोध होता है।

निम्बार्क भी इसी परम्परा को बनाये रखते हैं। उन्होंने मुख्यतः रामानुज के विचारों को ही ग्रहण किया है। वे यह स्वीकार करते हैं कि जीव नित्य चेतन द्रव्य है, अणुपरिणाम है, और संख्या में अनेक है, वह पूर्णतः ईश्वर पर आश्रित तथा ईश्वर द्वारा नियम्य है। अविद्या व कर्म के कारण वह शरीरयुक्त होकर जन्म मरण चक्र में संसरण करता है। वेदान्त कामधेनु में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जीवात्मा, परमात्मा के समान नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव वाला है, परन्तु वासना से आबद्ध होने के कारण, परमात्मा के अधीनस्थ है अर्थात् शरीर के जन्म, मरण, क्षय, वृद्धि, परिमाण आदि विकारों से ग्रस्त रहता है।[१२] सभी वैष्णवाचार्यों ने जीव के अणु परिमाण को स्वीकार किया है, क्योंकि यदि जीव के विभु परिमाणत्व को स्वीकार किया जाएगा तो जीव की उत्क्रान्ति, गति एवं आगति की क्रिया सम्पन्न नहीं हो पाएगी। निम्बार्क जीव को अनेक मानते हैं। वेदान्तकामधेनु की इस पंक्ति से 'अणुं हि जीव प्रतिदेह भिन्नं ज्ञातृत्वेवंतं यमनंतमाहुः' स्पष्ट है। यहाँ कहा गया है कि अनेकशरीरों में अलग-अलग होने से जीव अनन्त है। इससे देह एवं देही का सम्बन्ध स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। इसी तथ्य के आधार पर जीव का कर्तृत्व तथा भोक्तृत्व भी वास्तविक है।

वल्लभाचार्य अविकृत परिणामवाद को स्वीकार करते हैं। जिसके फलस्वरूप भगवान ही अविकृत भाव से जगदादि रूप ग्रहण करते हैं। तथा अविकृत भाव से जगदादि रूपों में अभिव्यक्त होने पर भी ब्रह्म में कोई विकार नहीं होता। इस दृष्टि से जीव तथा जगत दोनों परब्रह्म के परिणामरूप हैं। अतः जीव व जगत दोनों सत्य हैं। इसके फलस्वरूप जीव व शरीरी का सम्बन्ध भी वास्तविक है। जीव नित्य इसलिए वल्लभाचार्य ने इसकी उत्पत्ति को स्वीकार नहीं किया है। उनका मत है कि अग्नि से स्फुलिंग के समान ब्रह्म से जीव व्युच्चरित होता है।

Scanned by CamScanner

वस्तुतः आत्मा अनुत्पन्न है। देह के साथ सम्बन्ध होने के कारण ही उत्पत्ति का व्यपदेश किया जाता है, उत्पत्ति केवल शरीर की होती है।[१३] वल्लभ भी जीव के अणु रूप को स्वीकार करते हैं। यद्यपि इसके विरुद्ध यह प्रश्न उठता है कि यदि जीव रूप है तो वह समस्त शरीर को किस प्रकार चैतन्य कर सकता है? इस संशय का निराकरण करते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार शरीर के किसी एक स्थान में स्थित चंदन सारे शरीर को सुखकर प्रतीत होता है उसी प्रकार शरीर में स्थित जीव को चैतन्य रखता है। यद्यपि इसके विरुद्ध यह प्रश्न उठाया गया है कि चन्दन की स्थिति त्वचा के किसी स्थान विशेष में है जबकि जीव के लिए ऐसा नहीं कहा जा सकता? इसके प्रत्युत्तर में यह कहा गया है कि जीव भी एक ही स्थान विशेष में रहता है अर्थात् हृदय में जीव की स्थिति रहती है।[१४] वल्लभाचार्य के अनुसार जीव ज्ञाता, कर्ता व भोक्ता है।

जब श्री वल्लभ जीव को आराग्रमात्र मानते हैं तो उसे एक देश में स्थित स्वीकार करते हैं। तब हम यह भी मानने के लिए बाध्य हो जाते हैं कि वल्लभ के अनुसार जीव व देह का सम्बंध आभासमात्र या प्रतिबिम्बात्मक न होकर वास्तविक है। जब हम देह एवं जीव के सम्बन्ध को वास्तविक कहते हैं तो हमें इसका तात्पर्य यह नहीं लेना चाहिए कि ये सम्बन्ध दो भौतिक वस्तुओं के सम्बन्ध के समान है क्योंकि आराग्रमात्र होते हुए भी जीव भौतिक न होकर अत्यन्त सूक्ष्म है। अतः दोनों का सम्बन्ध वास्तविक है इसका तात्पर्य यही लेना चाहिए कि जीव अपनी उपस्थिति से देह को सक्रिय करता है तथा देह के माध्यम से जीव ज्ञाता, कर्ता व भोक्ता होता है। जीव का ज्ञातापन, कर्तापन व भोक्तापन आभास नहीं वरन् वास्तविक है।

अणुभाष्य में यह बताया गया है कि 'जीव जो-जो कामना करता है, वो, वो होता है तथा साधुकर्म करने वाला साधु होता है।'[१५] अर्थात् इससे यह स्पष्ट है कि जीव ज्ञाता, कर्ता व भोक्ता है। जीव का यह कर्तृत्व ब्रह्मगत होता है, क्योंकि जीव में कर्तृत्व ब्रह्म का अंश होने से माना जाता हैं।[१६] अतएव जीव के समस्त कार्य ब्रह्म को अर्पित हो जाते हैं। इस अवस्था में जीवन कर्ता व भोक्ता होकर भी दुःख से परे रहता है।[१७] परन्तु यदि जीव अहन्तामममतात्मक कल्पना जैसे समस्त कर्मों का मैं ही कर्ता हूँ, कर्मों से उत्पन्न फल का अधिकारी तथा भोक्ता भी मैं ही हूँ, आदि को ग्रहण करता है तो जीव का वास्तविक स्वरूप लुप्त हो जाता है। इस अवस्था में वह देहेन्द्रिय के धर्मों को ही सत्य मान लेता है, जिससे उसे अनेक दुःखों का भोग करना पड़ता है। मोह, माया, तृष्णा, वासना सुख-दुःखादि देह धर्म से ही सम्बन्धित है। जब जीव का देह से सम्बन्ध होता है तो वह जन्म-

Scanned by CamScanner

मरण चक्र में पड़ जाता है। यह जन्म-मरण चक्र अविद्या कल्पित है जो जीव के ज्ञान व भक्ति द्वारा नष्ट हो जाता है। अर्थात् ब्रह्मविषयक तत्त्व ज्ञान होने पर अविद्या द्वारा कल्पित संसार की निवृत्ति हो जाती है।

सभी वैष्णवाचार्य यथार्थवादी हैं उन्होंने संसार को शंकर की तरह मिथ्या नहीं माना है। मध्व के अतिरिक्त रामानुज, वल्लभ व निम्बार्क ईश्वर को यथार्थरूप से संसार का निमित्तोपादान कारण मानते हैं। जब जीव का देह के साथ सम्बन्ध होता है तो उसमें सर्वप्रथम 'अहं भाव' उत्पन्न होता है, जीव देह को ही 'मैं' समझने लगता है। फलस्वरूप जीव में विकार उत्पन्न होते हैं। जीव का स्वरूप देह के द्वारा आच्छादित हो जाता है। इसके विपरीत आदर्शवादी शंकर देह देही सम्बन्ध को वास्तविक नहीं मानते हैं, क्योंकि वे जगत को मिथ्या मानते हैं और ईश्वर के कारणत्व को भी उपाधिजन्य ही स्वीकार करते हैं। पारमार्थिक दृष्टि से ईश्वर, कारणता देश-काल आदि सबसे परे है। उनका देह देही सम्बन्ध भी इनकी इस मूल अवधारणा 'ब्रह्म सत्यं जगंमिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नाऽपरः' से अनुगमित होता है। देह देही सम्बन्ध वास्तविक न होकर प्रतिबिम्बात्मक है। शुद्ध चैतन्य का अन्तःकरण में प्रतिबिम्ब पड़ने पर वह अज्ञानवश स्वयं को कर्ता, भोक्ता समझ लेता है। शंकर के मत में शुद्ध चैतन्य कभी भी वास्तविक रूप से कर्ता भोक्ता नहीं होता। वैष्णवाचार्यों के अनुसार यह वास्तविक है जो कि कर्मजन्य है। यद्यपि इनमें देह-देही के सम्बन्ध के विषय को लेकर वास्तविकता या अवास्तविकता का मतभेद दृष्टिगोचर होता है तथापि ये सभी इस बात से सहमत हैं कि देह (आत्मा) देह (शरीर) का स्वामी है और वह उसको अनुप्राणित करता है।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ

१) श्रीभाष्य, २/३/३३, पृ. ८५२.

२) 'तदवदात्मनोऽकर्तृत्वे प्रकृतेश्चकर्तृत्वे तस्याः सर्व पुरुषसाधारणत्वात् सर्वाणि कर्माणि सर्वषा भोगायः स्युः नैव वा कस्यचित्।' - श्रीभाष्य - २/३/३६, पृ. ८५४.

३) "तत्रौवात्मनश्च कर्तृत्वभ्युपेत्पोच्यते - तत्रौव सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः पश्यत्यकृत बुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः' इति।" अधिष्ठानं तथा कर्ताकरणं च पृथक् चेष्टा दैंव चैवात्रा पंचमम्" इत्याधिष्ठानादि दैवपर्यन्त सापेक्ष सत्यात्मनः कर्तृत्वे य आत्मानमेव केवलंकर्तारं मन्यते न स पश्यतीत्यर्थः - श्रीभाष्य - २/३/३३, पृ. ८५३.

४) श्रीभाष्य - २/३/३४.

Scanned by CamScanner

५) भगवान् स्वयंमेव - "अहं सर्वस्य प्रभवो मतः सर्व प्रवर्तते, इति मत्वा भजंते मां बुधाभाव समन्विताः" इत्यारभ्य "तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीति पूर्वकम्, ददामि बुद्धियोगं त ये मामुपयोतिते" तेषामेवानुकंपार्थ अहमज्ञानजंतमः नाशयाम्यात्म भावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वताः" इति - श्रीभाष्य ३/३/४१, पृ. ८५९.

६) "तेन प्रद्योतेनेष आत्मा निष्क्रामति चक्षुषो वा मूहर्नोवाऽन्येभ्यो वा शरीरदेशेभ्यः - (व.उ. ६/४/२) - श्री भाष्य २/३/२०.

७) गतिरपि - 'ये वै केचास्माल्लोकात् प्रयंति चन्दमसमेव ते सर्वे गच्छन्ति" इति आगतिरपि - "तस्माल्लोकातुपुनरेत्यस्मै लोकाय कर्मणे" इति - श्रीभाष्य - २/३/२०, पृ. ८४२.

८) सुकृतदृष्कृतयोरेक देशस्य देहवियोग काले हानिः, शेषस्य च पश्चादिति उभयथा कर्मक्षये सत्येव गतेर्थवत्वम् - देवयानगतिश्रुतेरर्थव - त्वमित्यर्थः। अन्यथा हि विरोधः, देह वियोगकाल एवं सर्व कर्मक्षये सूक्ष्म शरीरस्यापि विनाशः स्यात्, तथासति केवलस्यात्मनो गमनं नोपपद्यते। अत उत्क्रान्ति समये विदुषो निःशेष कर्मक्षयो नोपपन्नः। - श्रीभाष्य ३/३/२९, पृ. १००७.

९) श्रीभाष्य ४/२/१४, पृ. ११५४.

१०) "अहमित्येव यो वेद्यसः जीव इति कीर्तितः स दुःखी स सुखी चैव स पात्रा बन्धमोक्षयोः" - विष्णुतत्त्व निर्णय, पृ. २६.

११) "कण्चुकऽस्ति तनुच्दायान त्वकण्चुकवाससि। तत्स्वाभाविका भावे न स्युरोरपाधिका अपि।।" - युक्तिमल्लिका, 'वादिराजतीर्थ', पृ. २२५. उदधृत द्वैत वेदान्त का तात्त्विक अनुशीलन, डॉ. कृष्ण कान्त चतुर्वेदी।

१२) वेदान्त कामधेनु पद्य - ३.

१३) "देहधर्मो जीवस्य भाक्तः, तत्सम्बन्धेनैवोत्पत्तिव्यपदेश इति सिद्धम्।" अणुभाष्य, ब्रह्मसूत्र २/३/१६

१४) अणुभाष्य २/३/२३ व २/३/२४.

१५) 'तस्यैव गांधर्वादिलोकेषु "यद् यद् कामयते तद्तद् भवति" इति विहार उपदिष्ट। ततश्च कर्तृत्व भोक्तत्वयोः साधुकारी साधुर्भवति" इति समानाधिकरण श्रवणाज्जीव एक कर्ता।" अणुभाष्य २/३३३.

१६) कर्तत्वं ब्रह्मगतमेव तत्संबन्धादेव जीवे कर्तृत्वं तदंशत्वादेश्वर्यादिवत्। - अणुभाष्य २/३/४१.

१७) कर्ता शास्त्रार्थत्वात् - अणुभाष्य २/३/३३ व २/३/४०.

Scanned by CamScanner